ओ३म्

केनोपनिषद् का भाष्य

(भूमिका)

इस उपनिषत् में मन, इन्द्रियों और प्राणों के गतिदाता तथा संसार को नियमित रूप से गति देने वाले का वर्णन है। यह उपनिषद् मिथ्याज्ञान को हटाने में अत्यन्त उपयोगी है। इसी विचार से इसका उर्दू भाषा में भाष्य किया है कि इसके द्वारा उर्दू भाषा जानने वाले तथा मुसलमान भाई मालूम कर सकें, कि कुरान और वेद की शिक्षाओं में कितना अंतर है और वैदिक शिक्षा उस विचार तक पंहुच ही नहीं पाती। यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, लोग स्वयं ही तुलना कर विचार से निर्णय कर लेंगे। इसमें प्रश्नोत्तर हैं। *

प्रथम खण्ड

प्रश्न- केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ?–१-१

पदार्थ- (केन) किसके द्वारा (इषितम्) आवश्यक पदार्थ को (पतति) प्राप्त करता है (प्रेषितम्) प्रेरित किया हुआ (मनः) मनन करने वाला, सोच विचार करने वाला मन (केन) किससे (प्राणः) श्वास, प्राण (प्रथमः) अपने विविध स्थानों में फैला हुआ (प्रैति) सब ओर

---

* जिस प्रकार यह उपनिषत् मुसलमानों के भ्रम को दूर करने में सहायक हो सकती है, उसी प्रकार पौराणिकों के साकारवाद का खण्डन, निराकारवाद की पुष्टि के द्वारा उनके भ्रम दूर करने में बड़ी उपकारक है। स्वामी जी ने मुसलमानों के उपकार के विचार से उपनिषदों पर भाष्य लिखे, किन्तु ये सभी के लिए लाभदायक हैं, अतः हमने भाष्यों का अनुवाद कर दिया है

पदार्थ- (श्रोत्रस्य) कान का (श्रोत्रम्) कान (मनसः) मन का (मनः) मन (यत) जो (वाचः) वाणी अर्थात् जिह्वा की (ह) सचमुच (वाचम्) जिह्वा है (सः+उ) वही (प्राणस्य) प्राण का भी (प्राणः) प्राण है (चक्षुषः) आंख की (चक्षुः) आंख है । (अतिमुच्य) त्याग कर (धीराः) धीर मनुष्य, धैर्यधारी मनुष्य (प्रेत्य) मरकर (अस्मात्+लोकात्) इस लोक से (अमृताः) मृत्युरहित अर्थात् मुक्त (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ- जो अटल या सूक्ष्म शक्ति सारे संसार को चलाने वाली है, वह कर्णेन्द्रिय से सूक्ष्म है, और उसका कान है अर्थात् कान उसकी शक्ति से सुनता है। भाव यह है कि जिस प्रकार शरीर कर्णेन्द्रिय के बिना नहीं सुन सकता, उसी भांति परमात्मा की सहायता के बिना कान भी नहीं सुन सकते। जिस प्रकार मन के संयोग के बिना इन्द्रियां अपने-अपने विषयों का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती, उसी प्रकार परमात्मा की सहायता के बिना मन भी अपना कार्य नहीं कर सकता, अतएव वह मन का भी मन है। जिस भांति गूंगा मनुष्य वाणी के बिना अपने आन्तरिक विचारों को प्रकट नहीं कर सकता, उसी प्रकार वाणी भी परमात्मा की सहायता के बिना गूंगी है, अतः वह वाणी की वाणी है। जिस प्रकार प्राणों के बिना कोई शरीर चेष्टा नहीं कर सकता, इसी भांति प्राण भी परमात्मा की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकते। अतः वह प्राणों का भी प्राण है। जैसे कोई भी मनुष्य आंख के बिना देख नहीं सकता। ऐसे ही परमात्मा की सहायता के बिना आंख देख नहीं सकती । फलितार्थ यह कि हर एक इन्द्रिय अपने कार्यों में परमात्मा की सहायता की अपेक्षा करती है; परमात्मा की सहायता के बिना कोई इन्द्रिय कार्य नहीं कर सकती।

प्रश्न- यदि प्रत्येक इन्द्रिय परमात्मा की सहायता से कार्य करती है, उसकी सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती, तो जीवात्मा अपने कार्यों में विवश =पराधीन हुआ, फिर वह कर्मों का उत्तरदाता क्योंकर हो सकता है ? क्योंकि यदि इन्द्रिय अपनी स्वतंत्रता से कार्य

कर सकती, तो उत्तरदाता होती । स्वतंत्र ही कर्मों का उत्तरदाता हो सकता है।

उत्तर- जीवात्मा कर्म्म करने में स्वतंत्र है। जिस प्रकार यद्यपि सूर्य के प्रकाश में मनुष्य भले या बुरे कर्म्म करता है। प्रकाश के बिना इन कर्म्मों को नहीं कर सकता। तथापि सूर्य पर मनुष्यों के भले-बुरे कर्मों का उत्तरदायित्व नहीं है, क्योंकि वह उसे कर्म करने पर बाधित नहीं करता है, इसी भांति परमेश्वर ने जीवों को कर्म्म करने के साधन शरीर और इन्द्रिय अवश्य दिये हैं, किन्तु वह जीवों को कर्म्म करने पर विवश नहीं करता।

प्रश्न- इन्द्रियां स्वयं हर समय कार्य करती हुई दिखती हैं उसमें ईश्वर की सहायता का मानना कपोल कल्पना मात्र है। उसमें कोई प्रमाण नहीं है।

उत्तर- जीव की प्रत्येक इन्द्रिय बाह्य वस्तुओं की सहायता की अपेक्षा करती है। आंख प्रकाश की, कान आकाश की, त्वचा वायु की, रसना=स्वाद इन्द्रिय जल की, नाक=सूंघने की इन्द्रिय भूमि की। यह सब पदार्थ अपना कार्य तब तक कर सकते हैं जब संस्थान=रचना की दशा में हो। रचना की दशा में अपना भी, इनके अपने वश की बात नहीं है क्योंकि प्रकृति में ज्ञान और चेष्टा नहीं है, इनको रचना की अवस्था में लाने वाला सर्वज्ञ और सब का गतिदाता परमात्मा है, अतः कोई भी इन्द्रिय परमात्मा की सहायता के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। सूर्य, चंद्र, पृथिवी आदि में जो शक्ति है, वह सब परमात्मा की दी हुई है।

प्रश्न- यदि इन्द्रियों के सहयोग के बिना जीवात्मा कुछ नहीं कर सकता, और बाह्य पदार्थों की सहकारिता के बिना इन्द्रियां कुछ नहीं कर सकती , और बाह्य पदार्थों का रचने वाला परमात्मा है, तो जितने पाप होते हैं, उनका मूलकर्त्ता परमात्मा ही है। न वह जगत को रचता, न इन्द्रियों को सहायता मिलती और न जीव पाप करते

भौतिक=प्राकृतिक {प्रकृति भी} नहीं, अतः इन्द्रियों से उसका ज्ञान कभी नहीं हो सकता।,

मन या तो इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान कराता है, अथवा किसी अंग या गुण को देखकर अनुमान करता है। अनुमान सदा प्रत्यक्ष के सहारे होता है, जिस ब्रह्म का कभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, मन उसका किस प्रकार अनुमान कर सकता है, अतः जो मनुष्य ऐसा जानता है कि वह इन्द्रियों के जानने योग्य पदार्थों से सर्वथा भिन्न है, वह उस सूक्ष्म प्रकृति से भी जो सूक्ष्म और अखण्ड परमाणु रूप होने से इन्द्रियों द्वारा नहीं जानी जा सकती, परे अर्थात् अधिक सूक्ष्म है, वही विशेष जानता है।

प्रश्न– यदि परमेश्वर विदित=ज्ञान पदार्थों से भिन्न है तो उसके परिच्छिन्न=एक देश=सीमित होने में क्या सन्देह है?

उत्तर– विदित पदार्थों से उसे भिन्न करने का तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियों से विदित होने वाले सभी पदार्थ नाशवान् हैं। ईश्वर अविनाशी है। अतः उसके गुण भौतिक तथा नाशवान् पदार्थों में नहीं मिल सकते। 'भिन्न' का अभिप्राय 'किसी एक स्थान में रहने वाला' नहीं है।

प्रश्न– ब्रह्म को प्रकृति से भिन्न और ऊपर क्यों कहाँ ? प्रकृति भी सत्=सदा रहने वाली है।

उत्तर– प्रकृति जड़= चेतना रहित है, अतः स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्म चेतन=सर्वज्ञ और स्वतन्त्र है, प्रकृति उसके वश में है, अतः वह प्रकृति से परे अर्थात् अधिक सूक्ष्म है और उससे श्रेष्ठ है। भाव इसका यह है यदि शिष्य ब्रह्मवेत्ता=ब्रह्म के जानने वाले और ब्रह्मनिष्ठ=ब्रह्म में श्रद्धा करने वाले गुरू से पूछे कि–ब्रह्म क्या है तो गुरू उसे यह बतलाये कि ब्रह्म इन्द्रियों और विज्ञान=पदार्थ विद्या=सायंस के सूक्ष्म उपकरणों से, जो केवल भौतिक पदार्थों का ज्ञान कराते हैं, नहीं जाना जा सकता। वरन् धारणावती, सूक्ष्म मेधा-नामक बुद्धि से वह जाना

भावार्थ- चूंकि ब्रह्म अर्थात् जगत्पिता परमात्मा निराकार होने के रूप से रहित है, इस वास्ते उसकोआंख नहीं देख सकती, आंख तो केवल पदार्थों का रूप ही दिखा सकती है। शब्द द्वारा प्रत्येक वस्तु के गुण वर्णन हो ही नहीं सकता। मन संसार के पदार्थों को प्रायः झटपट जान लेता है। किन्तु अनन्त ब्रह्म को इस दशा में, वह भी नहीं जान सकता। मनुष्य के पास ज्ञान के साधन इन्द्रियाँ और मन हैं, और यह ब्रह्म का अनुभव नहीं करा सकते, अतः हम ब्रह्म को नहीं जानते। यद्यपि अनुमान के द्वारा व्याप्ति ज्ञान पूर्वक* अन्य

---

* यहाँ स्वामी जी ने अनुमान की चर्चा की है। पाठकों की सुविधा के लिए हम यहाँ मुख्य चार प्रमाणों के लक्षण तथा उदाहरण लिखते हैं—

ज्ञान, यथार्थ अनुभव, प्रमा, प्रमिति—ये शब्द पर्यायवाची हैं, इनका अर्थ एक है। प्रमा के कारण=साधन को प्रमाण कहते हैं। प्रमा चार —प्रकार की होती है।—प्रत्यक्ष, अनुमति, उपमति और शब्द।

१. प्रत्यक्ष प्रमिति—इन्द्रिय और अर्थ के संनिष्कर्ष से पैदा होने वाले, निश्चयात्मक और अव्यभिचारी ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमिति कहते हैं। इस के करण=साधन को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। जैसे किसी रूप वाले पदार्थ के साथ आंख का संनिष्कर्ष होने पर उस पदार्थ के सम्बन्ध में जो ज्ञान पैदा हो, और वह निश्चयात्मक अव्यभिचारी भी हो तो उसे पदार्थविषयक प्रत्यक्ष प्रमिति होगी। आंख या आंख और उस पदार्थ का संनिकर्ष प्रत्यक्ष प्रमाण होगा।

२. अनुमति— जहां-जहां अविच्छिन्न रेखा वाला धुआं हो, वहां-वहां आग होती है, इस अव्यभिचारी अविनाभाव नियम को व्याप्ति कहते हैं। अनुमति में लिंग दर्शन, व्याप्तिज्ञान और लिंग परामर्श आवश्यक होते हैं। जैसे दूर धुआं देखकर हम कल्पना करते हैं, कि वहां धुआं है। देखिए धुआ आग का निशान=लिंग है। सबसे पहले लिंगदर्शन हुआ, उसे देखते ही स्मरण आया कि जहां-जहां धुआं होता है। वहा-वहां आग होती है' इसको व्याप्ति स्मरण=व्याप्तिज्ञान कहते हैं, इसके बाद 'यहां धुआं है' यह ज्ञान फिर हुआ इसको लिंग निश्चित अनुमति होती है, इस अनुमति का कारण तृतीयलिंग परामर्श है, वही अनुमान है।

३. उपमिति— एक नागरिक मनुष्य गवय= नील गाय की खोज में जंगल में गया, उससे पहले उसने गवय देखी नहीं। वहां वन में उसे एक वनवासी मिलता है, उससे यह नगरवासी पूछता है— 'गवय कैसी है ?' वह उत्तर देता है— 'जैसे गौ होती है, वैसे गवय होती है।' आगे वन में जाकर वह एक पशु को देखता है, जो गौ तो नहीं, किन्तु

पदार्थों के कुछ धर्मों को जान सकते हैं। तथापि ब्रह्म को अनुमान से भी जान सकते। संसार के आरम्भ काल के ऋषियों ने जो उसकी व्याख्या की है जो आज तक अनुक्रम से हम तक पंहुचती है, वहीं हम बतलाते हैं। परमात्मा को जानने का उपाय, उन महात्माओं के उपदेश के अतिरिक्त जिनको परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में उपदेश दिया और हो ही नहीं सकता। प्रत्येक वस्तु के जानने के लिये कोई न कोई प्रमाण होना चाहिये, प्रमाण के बिना किसी वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता। किन्तु प्रमाण जानने के लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, यदि प्रमाण के लिये भी किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता पड़े तो अनवस्था दोष आयेगा। अर्थात् प्रमाण के लिये दूसरे प्रमाण, उसके लिये अन्य प्रमाण इस प्रकार यह चक्र कभी समाप्त ही नहीं हो सकता।

ब्रह्म सारे प्रमाणों से परे है। उसके गुणों और सामर्थ्य के सिवा, और कोई प्रमाण उसको अनुभव नहीं करा सकता। इन्द्रियां तो भौतिक=प्राकृतिक पदार्थों को अनुभव करा सकती है। ब्रह्म

गौ से बहुत मिलती है। उसको निश्चय होता है यह पशु गवय है। अर्थात् गवय शब्द और उस पशु का सम्बन्धज्ञान उसे होता है। संज्ञा=नाम और संज्ञा=नाम वाले के सम्बन्ध का ज्ञान उपमान का प्रयोजन है।

४. शाब्द प्रमति— आप्त मनुष्य के उपदेश का नाम शब्द प्रमाण है, उस से होने वाले ज्ञान को शब्द प्रमिति कहते हैं। जिस मनुष्य को अपने प्रतिपाद्य विषय का यथार्थ ज्ञान हो, दूसरों को उसका यथार्थ ज्ञान कराने की उत्कट अभिलाषा भी हो, उसे आप्त कहते हैं।

इतना ध्यान रहे कि प्रत्यक्ष से विशेष का ज्ञान होता है, अनुमान आदि से ही सामान्य का ज्ञान। जैसे दूर से धुआं देखकर जो आग का अनुमान होता है, वहां आग का ही ज्ञान होता है, उससे यह ज्ञान नहीं होता कि यह लकड़ी की आग है, बांस की है या सरकंडों की आग है। प्रत्यक्ष से यह निश्चय होता है कि अमुक लकड़ी की आग है। प्रत्यक्ष केवल इन्द्रियगम्य पदार्थों का ही हो सकता है, किन्तु अनुमान तो प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, अतीत, वर्त्तमान, अनागत सभी ज्ञान कराता है, अतः दार्शनिक लोगों के ही अनुमान की महिमा बहुत मानी जाती है।

भौतिक=प्राकृतिक {प्रकृति भी} नहीं, अतः इन्द्रियों से उसका ज्ञान कभी नहीं हो सकता।,

मन या तो इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान कराता है, अथवा किसी अंग या गुण को देखकर अनुमान करता है। अनुमान सदा प्रत्यक्ष के सहारे होता है, जिस ब्रह्म का कभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, मन उसका किस प्रकार अनुमान कर सकता है, अतः जो मनुष्य ऐसा जानता है कि वह इन्द्रियों के जानने योग्य पदार्थों से सर्वथा भिन्न है, वह उस सूक्ष्म प्रकृति से भी जो सूक्ष्म और अखण्ड परमाणु रूप होने से इन्द्रियों द्वारा नहीं जानी जा सकती, परे अर्थात् अधिक सूक्ष्म है, वही विशेष जानता है।

प्रश्न– यदि परमेश्वर विदित=ज्ञान पदार्थों से भिन्न है तो उसके परिच्छिन्न=एक देश=सीमित होने में क्या सन्देह है?

उत्तर– विदित पदार्थों से उसे भिन्न करने का तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियों से विदित होने वाले सभी पदार्थ नाशवान् हैं। ईश्वर अविनाशी है। अतः उसके गुण भौतिक तथा नाशवान् पदार्थों में नहीं मिल सकते। 'भिन्न' का अभिप्राय 'किसी एक स्थान में रहने वाला' नहीं है।

प्रश्न– ब्रह्म को प्रकृति से भिन्न और ऊपर क्यों कहाँ ? प्रकृति भी सत्=सदा रहने वाली है।

उत्तर– प्रकृति जड़= चेतना रहित है, अतः स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्म चेतन=सर्वज्ञ और स्वतन्त्र है, प्रकृति उसके वश में है, अतः वह प्रकृति से परे अर्थात् अधिक सूक्ष्म है और उससे श्रेष्ठ है। भाव इसका यह है यदि शिष्य ब्रह्मवेत्ता=ब्रह्म के जानने वाले और ब्रह्मनिष्ठ=ब्रह्म में श्रद्धा करने वाले गुरू से पूछे कि–ब्रह्म क्या है तो गुरू उसे यह बतलाये कि ब्रह्म इन्द्रियों और विज्ञान=पदार्थ विद्या=सायंस के सूक्ष्म उपकरणों से, जो केवल भौतिक पदार्थों का ज्ञान कराते हैं, नहीं जाना जा सकता। वरन् धारणावती, सूक्ष्म मेधा-नामक बुद्धि से वह जाना

जा सकता है। चंचल चित्त वाले मनुष्यों की बुद्धि भी उसको जानने में समर्थ नहीं है।,

प्रश्न– क्या कारण है कि ब्रह्म प्रत्यक्ष का विषय नहीं है ?

उत्तर– इस वास्ते कि वह सबसे सूक्ष्म और समीप है। जो वस्तु ससीम और सूक्ष्म होती है, वह शुद्ध और निश्चल मन के बिना ज्ञात नहीं हो सकती। ३।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते। ४।

पदार्थ– (यत्) जो ब्रह्म (वाचा) वाणी से (अनभ्युदितम्) वर्णन नहीं किया जा सकता (येन) जिस से अर्थात् जिसकी शक्ति से (वाक्) वाणी बोल सकती है या प्रकट कर सकती है (तत्) उसको (एव) ही (ब्रह्म) सब से महान् परमात्मा (त्वम्) तू (विद्धि) जान। (न) नहीं (इदम्) यह (यत्+इदम्) जिस इसको (उपासते) लोग उपासना करते हैं।

भावार्थ–जिस ब्रह्म को वाणी शब्दों से प्रकट नहीं कर सकती। वरन् ब्रह्म के बनाये नियमों से उसमें बोलने का सामर्थ्य है जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार से अक्षरों के व्यक्त करने के लिये ब्रह्म ने स्थान नियत कर दिये हैं, इस स्थान से उन शब्दों का प्रकाश हो सकता है, उसके विपरीत नहीं; जिसके नियमों से बंधी हुई वाणी शब्दों और उनके अर्थों का ज्ञान कराती है, तू उसी को ब्रह्म अर्थात् परमात्मा जान। और जिसकी ओर 'यह' बतला कर इशारा किया जा सकता है, और जिसकी संसारी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

प्रश्न– ब्रह्म के लिए 'यह ब्रह्म है' ऐसा उपदेश क्यों नहीं कर सकते ?

उत्तर– चूँकि यह और वह समीप या दूर में उपस्थित का ही वर्णन करते हैं। ब्रह्म सर्वत्र व्यापक होने से समीपता या दूरी के भावों

से पृथक् है, अतः ब्रह्म के लिए इस प्रकार का उपदेश नहीं हो सकता ।४।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते । ५ ।

पदार्थ– (यत्) जो ब्रह्म (मनसा) मन से (न) नहीं (मनुते) विचार में आ सकता (येन) जिससे (आहुः) कहते हैं (मनः) मन अर्थात् मनुष्यों का मन=कर्म्म करने वाला अन्तःकरण (मतम्) विचारता हुआ, विषयों को जानता हुआ (तत्) उसे (एव) ही (ब्रह्म) सबसे बड़ा परमात्मा (त्वम्) तू (विद्धि) जान। (न) नहीं (इदम्) यह (यत्) जिस (इदम्) इसको (उपासते) साधारण लोग उपासना अर्थात् सेवा करते हैं।

भावार्थ—वह परमात्मा मन के विचारों से जानने योग्य नहीं है क्योंकि मन उन्हीं पदार्थों का विचार कर सकता है, जिनके गुणों को ग्रहण कर सके। परमात्मा के गुण अगण्य और अनन्त हैं, वह उनके जानने में किसी प्रकार समर्थ नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि मन उन्हीं पदार्थों का ज्ञान कर सकता है जो किसी समय अन्य इन्द्रियों द्वारा ज्ञात हो चुके हों। ब्रह्म का इन्द्रियों से किसी काल में प्रत्यक्ष नहीं ज्ञात होता, इस वास्ते उसके समस्त गुणों से अपरिचित होने के कारण उसका विचार भी नहीं हो सकता। मन जो कुछ विचार करता है, वह ब्रह्म की सामर्थ्य तथा नियमों की सहायता से करता है,। अतः सांसारिक सुखों के ये साधन, जिन की लोग उपासना करते हैं, ब्रह्म नहीं हैं, वरन् जो इन सब नियमों को रचने वाला है, जिसकी सहायता से मन कार्य करता है, तू उसी को बह्म जान।

प्रश्न– यदि ब्रह्म का तीनों कालों में, इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता तो उसके होने में प्रमाण क्या है ?

उत्तर— मन इन्द्रियों आदि के नियमों का होना ही उसकी सत्ता में प्रमाण है। हमारे शरीर में आत्मा के होने के प्रमाण यही है कि

शरीर की चेष्टायें नियम से होती हैं। इंजिन आदि जड़ पदार्थों की चेष्टायें भी ड्राइवर की उपस्थिति में ही नियम पूर्वक होती हैं। यदि ड्राइवर न हो तो अनियमित होने लगती हैं। ड्राइवर को नियम पूर्वक इंजिन चलाता देखने से इंजिन की रचना में नियमों का होना ज्ञात होता है, और नियमों का होना उसके बनाने वाले को सिद्ध करता है।

प्रश्न– मन के द्वारा ही इस प्रकार का विचार और अनुमान होगा। जब मन उसको मालूम नहीं कर सकता, तो उस विचार का होना किस प्रकार प्रमाण होगा ?

उत्तर– मन उसके सब गुणों को ग्रहण नहीं कर सकता। किन्तु उसके एकाध गुणों के द्वारा उसकी सत्ता जान सकता है। जैसे समाधि-अवस्था में परमात्मा के आनन्द गुण के अनुभव करने से उसका मानसिक प्रत्यक्ष होता है। ५।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते। ६।

पदार्थ – (यत्) जो (चक्षुषा) आंख से (न) नहीं (पश्यति) देखता है और देखा जाता है, (येन) जिसे (चक्षूंषि) आंखें (पश्यति) देखती है। (तत्) उसको (एव) ही ब्रह्म) सब से महान् परमात्मा (त्वम्) तू (विद्धि) जान (न) न कि (इदम्) इसको (यत्+इदम्) जिस इसको (उपासते) लोग पूजते हैं।

भावार्थ– जो ब्रह्म आंखों से नहीं दीखता और न देखा जाता है वरन् जिसके नियम से बल पाकर आँखें देखती हैं, उसकी जिसकी सहायता से सब जीव ब्रह्म पदार्थों का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करते हैं, तू उन्हीं, आंखों को देखने की शक्ति देने वाले को ब्रह्म जान। आंखों से देखने योग्य जिन वस्तुओं की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते । ७ ।

पदार्थ– (यत्) जो (श्रोत्रेण) कान से (न) नहीं (शृणोति) सुनता है (येन) जिस शक्ति से (श्रोत्रम्) कान (इदम्) यह (श्रुतम्) सुनता है । (तत्) उसको (एव) ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) सबसे महान् परमात्मा (विद्धि) जान । (न) नहीं (इदम्) इसको (यत्+इदम्) जिस इसको (उपासते) लोग पूजते हैं ।

भावार्थ– वह ब्रह्म कानों के द्वारा सुनने में नहीं आता है, वरन् कान जिसकी सहायता से सुनते हैं, तू उसको ब्रह्म जान । जिस शब्दादि विषय की साँसारिक लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं हैं । भाव यह है कि ब्रह्म को अपने कार्यों में कान आदि इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है । वरन् कान आदि में सुनने आदि का सामर्थ्य ब्रह्म के रचे नियमों के कारण से है । कोई इन्द्रिय ब्रह्म की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती । ७ ।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते । ८ ।

पदार्थ– (यत्) जो (प्राणेन) प्राण से (न) नहीं (प्राणिति) सांस लेता है (येन) जिससे (प्राणः) प्राण (प्रणीयते) कार्य में लगता है । (तत्) उस को (एव) ही (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वम्) तू (विद्धि) जान (न) न कि (इदम्) इसको (यत् + इदम्) जिस इसको (उपासते) लोग पूजते हैं ।

भावार्थ– वह ब्रह्म प्राणों की गति से श्वास-प्रश्वास नहीं लेता है । प्राण जिसकी सहायता से अपना कार्य्य करते हैं उसको तू ब्रह्म जान । परमात्मा की सहायता के बिना प्राण भी कुछ नहीं कर सकते । अतः हे जीव ! तू उसी को ब्रह्म जान, जो जीवन और मरण का कारण

है, और जिस कारण लोग जिनकी उपासना करते हैं, ब्रह्म मत मान। मूर्ख लोग ही प्राणों को ब्रह्म मान कर उपासना करते हैं। ८।

तलवकार (केन) उपनिषद् का प्रथम खण्ड समाप्त हुआ। इस खंड में व्याप्य व्यापक के सम्बन्ध से सब इन्द्रियों का परमात्मा की सहायता से कार्य्य करना और परमात्मा को अपने कार्यों में इंन्द्रियों की आवश्यकता का न होना बतलाया गया है। इस संसार के बिना साधारण लोगों को ब्रह्मज्ञान होना कठिन है, अतः संसार के पदार्थों द्वारा निषेधात्मक विधि से ब्रह्मज्ञान कराने का यत्न यहां किया गया है। वाणी, मन, आंख, कान और प्राण केवल प्रधान समझ कर यहां कहे गये हैं, तात्पर्य सब इन्द्रियों से है। ज्ञानेन्द्रियों में आंख और कान प्रधान है, कर्म्मेन्द्रियों में वाणी मुख्य है, मन उभयात्मक (ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय) है और इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। प्राण सब प्रकार के वायुओं से श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि जिसको श्रेष्ठ नहीं जान सकते उसको निष्कृष्ट या तुच्छ कैसे जान सकेंगे ?

यहां प्रथम खंड समाप्त करके द्वितीय खंड का आरम्भ करते हैं–

द्वितीय खंड

इस उपनिषद् में गुरू और शिष्य के प्रश्नोत्तरों से संवाद चलाया गया है, जिस से जिज्ञासु जन अभिप्राय ठीक-ठीक समझ सकें। आरंभ में जिज्ञासु शिष्य ने प्रथम वाक्य में प्रश्न किया था, सात वाक्यों में गुरू ने उसका उत्तर दिया। अब दूसरे प्रकार से समझाने के लिए गुरू उपदेश करता है–

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ। ब्राह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्। ६। १।

पदार्थ– (यदि) यदि (मन्यसे) तू मानता है (सुवेद) कि मैं भले प्रकार जानता हूं (इति) ऐसा (दभ्रम्) सूक्ष्म (एव) ही (अपि) भी

(नूनम्) सचमुच (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता है (ब्रह्मणः) ब्रह्म=परमात्मा के (रूपम्) वास्तविकता का (यत्) जो (अस्य) इसका (त्वम्) तू (यत्) जो (अस्य) इसका (देवेषु) विद्वानों में (अथ) सचमुच (मीमांस्यम्) युक्तिपूर्वक विचार करने योग्य (एव) ही (ते) तेरा (मन्ये) मैं मानता हूं (विदितम्) ज्ञात, प्रकट, प्रकाशित को।

भावार्थ— गुरू शिष्य से कहता है कि हे शिष्य! यदि तेरा विचार है कि मैं ब्रह्म को पूर्ण रूप से जानता हूं तो मैं इस बात को नहीं मानता। जो ब्रह्म के जानने का अभिमान करता है वह ब्रह्म को नहीं जानता, क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि उसको जानने का अभिमान करना मेरे विचार में उचित नहीं , अतः शास्त्र प्रमाण और तार्किक युक्तियों से सदा ब्रह्म का विचार करते रहना चाहिए, इस बात को मैं भलि-भांति जानता हूं। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य यह घोषणा करता है कि मैंने ठीक रीति से ब्रह्म का स्वरूप जान लिया, वह सर्वथा नहीं जानता, क्योंकि मनुष्य तो साधारण पदार्थों को भी पूर्णरूप से जानने का दावा नहीं कर सकता, तो परमात्मा को पूर्णरूपेण जानने का दावा कैसे संगत हो सकता है ? मनुष्य अल्पज्ञ है, अतः किसी पदार्थ के तत्त्व को जानकर अहंकार नहीं करना चाहिये। जिनके हृदय में ब्रह्म को पूर्ण रूप से जानने का अभिमान हो, उन्हें छोड देना चाहिये, क्योंकि अभिमान होने पर उन्नति रूक जाती है। प्रत्येक मनुष्य को ठीक रीति से ब्रह्मविचार करना चाहिए इसके लिये शास्त्रीय और तार्किक युक्तियों से कार्य करना, और ब्रह्मविचार में लगे रहना ही बुद्धिमत्ता का चिन्ह है।।१।।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो नवेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च। १०। २।

पदार्थ- (न) नहीं (अहम्) मैं (मन्ये) मानता हूं (सुवेद) कि ठीक रीति से जानता हूं (इति) ऐसा, (नो) न हो (नः) नहीं (वेद) जानता हूं (इति) ऐसा (वेद) जानता है (च) भी (यः) जो (नः) हममें से (तत्)

जीवन्मुक्ति को (हि) सचमुच (विन्दते) प्राप्त करता है (आत्मना) अपने स्वरूप से (विन्दते) प्राप्त करता है (वीर्यम्) बल और शक्ति को (विद्यया) विद्या या ज्ञान से (विन्दते) प्राप्त करता है (अमृतम्) मुक्ति को।

भावार्थ- जब मनुष्य विषयों की कामना छोड़कर इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है और मन को इन्द्रियों के विषयों से हटा कर समाधि में लगा कर जब मानसिक प्रत्यक्ष करता है, तब उससे वह जीवमुक्ति के आनन्द को प्राप्त करता है। आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने से मनुष्य को आत्मिक बल मिलता है। जो लोग आत्मिक बल से रहित हैं वे किसी भी धर्म सम्बंधी कार्य को उचित रीति से नहीं कर पाते। आत्मिक दुर्बलता दूर करने का साधन आत्मज्ञान है। आत्म ज्ञान होने के साथ ही आत्मा की शक्ति का ज्ञान हो जाता है। जब आत्म ज्ञान में लगातार मनुष्य योग बल को प्राप्त करता है तब उसे सत्यविद्या प्राप्त होती है। और सत्यविद्या की प्राप्ति से मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। जो लोग केवल भौतिक विज्ञान को जानकर दुःखों से बचने और छूटने की आशा करते हैं, वे बहुत बड़े भ्रम में पड़े हैं। भौतिक विज्ञान से भूतों=प्रकृति के साथ सम्बंध बढ़ जाता है जिससे दुःखों की वृद्धि होती है, न कि कमी। यह बात प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है कि आत्मिक बल न होने की दशा में मनुष्य परमेश्वर को नहीं जान सकता। अतः सबसे पूर्व ज्ञान, कर्म, उपासना के द्वारा परमात्मा को जानना चाहिये पश्चात् मुक्ति मिलेगी। मल, विक्षेप और आवरण - इन तीन दोषों के नाश हुए बिना आत्मिक शक्ति और मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।१३। ५।

पदार्थ- (इह) इस जन्म या संसार में (चेत्) यदि (अवेदीत्) आत्मा को जान जाये (अथ) तो उस दशा में (सत्यम्) जीवन सुफल

जिसको ब्रह्म ज्ञान के विधानों में संदेह न हो, वह यह नहीं कह सकता कि मैं नहीं जानता। मिश्री खाने से मिश्री का स्वाद प्रतीत हो सकता है। यदि कोई पूछे मिश्री का स्वाद क्या होता है, तो कहना कि-मीठा। अब यदि इस पर प्रश्न हो कि मीठा कैसा होता है, तो इसका उत्तर इसके अतिरिक्त क्या हो सकता है कि उसे मिश्री देकर कहा जाये कि खाकर अनुभव कर लो। इसके अतिरिक्त और कोई समाधान सन्तोषकारक नहीं हो सकता। इन्द्रियों से प्रतीत होने वाले पदार्थों में एक इन्द्रिय से ज्ञात होने वाला पदार्थ, उस इन्द्रिय के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रिय से ज्ञात नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञान, चूंकि अन्तः करण की सर्वथा विमल दशा में हो सकता है, उसका भी वर्णन वाणी से नहीं हो सकता।

प्रश्न- यह कहा गया है कि मन और बुद्धि से ब्रह्म को नहीं जान सकते। तब ब्रह्मज्ञान क्या है?

उत्तर- ब्रह्मज्ञान शुद्ध बुद्धि और शुद्ध मन से होता है। विषयों से ग्रस्त मन में ब्रह्मज्ञान की योग्यता या शक्ति नहीं है। २।

यस्यामतं तस्य मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् । ११ । ३ ।

पदार्थ- (यस्य) जिसका अर्थात् जिस ब्रह्मज्ञानी विद्वान् का (अमतम्) मन से उसे नहीं जान सकते, (तस्य) उस विद्वान् का (मतम्) माना हुआ अर्थात् यथार्थ ज्ञान है, क्योंकि उसने ब्रह्म को जान लिया है। (मतम्) ब्रह्म को मैंने जान लिया, ऐसा ज्ञान (यस्य) जिसका है (न) नहीं (वेद) जानता है (सः) वह। (अविज्ञातम्) नहीं जाना हुआ होता है(विज्ञानताम्) ब्रह्मज्ञान के अभिमानियों का (विज्ञानम्) जाना हुआ होता है (अविज्ञानताम्) ब्रह्मज्ञान का अभिमान न रखने वालों का।

भावार्थ- जो मनुष्य यह विचार करता है कि ब्रह्म मन से नहीं जाना जाता, वह सचमुच ब्रह्म को जानता है। और जो यह विचारता

है कि उसे इन्द्रियों से जान सकते हैं, वह ब्रह्म को सर्वथा नहीं जानता है। जिनको ब्रह्मज्ञान का अभिमान होता है उनको ब्रह्मज्ञान सर्वथा नहीं होता। जो ब्रह्मज्ञानी हैं वे किसी अवस्था में ज्ञान का अभिमान नहीं करते। इस उपनिषद् ने झूठे योगियों तथा ब्रह्मज्ञानियों से जन-साधारण को सावधान करने और बचाने के लिये स्पष्टतया कह दिया है कि जो लोग ब्रह्मज्ञान का अभिमान करते हैं, वे ब्रह्म को सर्वथा नहीं जानते और न ही उन्हें योग का रहस्य ज्ञात है। संसार में देखा जाता है कि जिनके पास रत्न होते हैं, वे उन्हें पेटियों में छिपाकर रखते हैं, और जिनके पास कौड़ियां होती हैं, वे उन्हें बाजार में बोली दे देकर बेचते हैं। प्रत्येक मोक्षाभिलाषी जिज्ञासु को चाहिये कि वे इस उपनिषद् के तात्पर्य को ध्यान में रखकर आजकल के झूठे ब्रह्मज्ञानियों के धोखे से बचकर आत्मिक शांति प्राप्त करें और अपनी मूर्खता से योग और ब्रह्मविद्या से सर्वथा अपरिचित, अनभिज्ञ लोगों को योगी और ब्रह्मज्ञानी मानकर, उनसे अपनी आशा पूरी होते न देखकर ब्रह्मज्ञान का ही विरोध न करने लग जायें। प्रत्येक मनुष्य को अवश्य इस बात को ध्यान रखना चाहिये कि जो लोग संसारासक्त हैं, उनसे ब्रह्मज्ञान का कोई संबंध नहीं। और जो लोग सचमुच ब्रह्मज्ञानी हैं, वे संसारासक्त और संसारी जनों से परे रहते हैं, क्योंकि उनके संग से ब्रह्मोपासना में विघ्न होता है। ईश्वर के भक्त ही ब्रह्मज्ञानी को जान सकते हैं और ब्रह्मज्ञानी भी ईश्वर भक्तों से मिलना पसन्द करते हैं, संसारासक्तों से उन्हें कोई लाभ नहीं होता। ३।

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्य्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्। १२। ४

पदार्थ- इन्द्रियों के द्वारा विषयों को जानकर वैसी ही बुद्धि हो जाने को बोध कहते हैं, उसे रोक कर ईश्वर में लगाने को प्रतिबोध कहते हैं, प्रतिबोध से जानने का नाम 'प्रतिबोध-विदित' हैं (मतम्) जाना जाता है अर्थात् उस ज्ञान से ब्रह्म जाना जाता है (अमृतत्वम्)

जीवन्मुक्ति को (हि) सचमुच (विन्दते) प्राप्त करता है (आत्मना) अपने स्वरूप से (विन्दते) प्राप्त करता है (वीर्यम्) बल और शक्ति को (विद्यया) विद्या या ज्ञान से (विन्दते) प्राप्त करता है (अमृतम्) मुक्ति को।

भावार्थ- जब मनुष्य विषयों की कामना छोड़कर इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है और मन को इन्द्रियों के विषयों से हटा कर समाधि में लगा कर जब मानसिक प्रत्यक्ष करता है, तब उससे वह जीवमुक्ति के आनन्द को प्राप्त करता है। आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने से मनुष्य को आत्मिक बल मिलता है। जो लोग आत्मिक बल से रहित हैं वे किसी भी धर्म सम्बंधी कार्य को उचित रीति से नहीं कर पाते। आत्मिक दुर्बलता दूर करने का साधन आत्मज्ञान है। आत्म ज्ञान होने के साथ ही आत्मा की शक्ति का ज्ञान हो जाता है। जब आत्म ज्ञान में लगातार मनुष्य योग बल को प्राप्त करता है तब उसे सत्यविद्या प्राप्त होती है। और सत्यविद्या की प्राप्ति से मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। जो लोग केवल भौतिक विज्ञान को जानकर दुःखों से बचने और छूटने की आशा करते हैं, वे बहुत बड़े भ्रम में पड़े हैं। भौतिक विज्ञान से भूतों=प्रकृति के साथ सम्बंध बढ़ जाता है जिससे दुःखों की वृद्धि होती है, न कि कमी। यह बात प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है कि आत्मिक बल न होने की दशा में मनुष्य परमेश्वर को नहीं जान सकता। अतः सबसे पूर्व ज्ञान, कर्म, उपासना के द्वारा परमात्मा को जानना चाहिये पश्चात् मुक्ति मिलेगी। मल, विक्षेप और आवरण - इन तीन दोषों के नाश हुए बिना आत्मिक शक्ति और मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।१३। ५।

पदार्थ- (इह) इस जन्म या संसार में (चेत्) यदि (अवेदीत्) आत्मा को जान जाये (अथ) तो उस दशा में (सत्यम्) जीवन सुफल

(अस्ति) है (न) नहीं (चेत्) यदि (इह) इस जन्म में (अवेदीत्) आत्मज्ञान प्राप्त किया या आत्मा को जान लिया (महती) बड़ी (विनष्टिः) हानि या विनाश हुआ (भूतेषु) जीवों में (भूतेषु) पंच भूतों में (विचित्य) विचार की दृष्टि से देखकर (धीराः) धैर्य्यधारी धर्मात्मा (प्रेत्य) अगले जन्म में (अस्मात्) इस (लोकात्) लोक से (अमृताः) चिरस्थायी मुक्त (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ- यदि मनुष्य अपने इस वर्तमान जीवन में अपने लक्ष्य की ओर ठीक-ठीक प्रवृत हो गया तो उसने अपने जन्म को सुफल कर लिया। यदि प्राणी इस मनुष्य तन में, जो कर्त्तव्य और भोक्तव्य दोनों के साथ संबंध रखता है, ईश्वर को जान ले तो मुक्ति प्राप्त हो सकती है। यदि इस शरीर को केवल भोग-भावना में ही लगाये रखे और परमात्मा के जानने के स्थान में दिन-रात केवल शरीर की पुष्टि का यत्न करे तो उस अवस्था में बड़ी हानि होती है, क्योंकि नर तन के छूटते ही स्वतंत्रता अर्थात् कर्त्तव्य की शक्ति समाप्त हो जाती है, फिर अनेक जन्मों तक भोग योनियों अर्थात् ज्ञान शून्य देहों में धक्के खाने पड़ते हैं, तब कहीं मनुष्य जन्म पुनः प्राप्त होता है। अतः धर्म्मात्मा जन प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ में कर्म्मफल प्रदानता और गतिप्रदानता परमात्मा को विवेक की दृष्टि से देखते हैं, और कर्म्म करने में स्वतंत्रता का प्रयोग करते हैं, तब शरीर को छोड़कर मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस वचन का स्पष्ट तात्पर्य है कि जो मनुष्य अभी से धर्म्म विचार में रत होकर परमात्मा को जानने का यत्न करता है, वही सफल होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य जीवन को केवल संसारी कार्य्यों में लगाये रखता है, वह अपनी महती हानि कर रहा है।५।

यहां पर इस उपनिषद् का दूसरा खण्ड समाप्त हुआ।

तृतीय खण्ड

प्रथम खण्ड में ब्रह्म को जानने में इन्द्रियों की अयोग्यता बतलाई। द्वितीय खण्ड में ब्रह्म ज्ञान का साधन और उसका विलक्षण होना बतला कर अब ब्रह्म का ज्ञान एक अलंकार से कराते हैं। इस खण्ड को बहुत सावधानता से विचारना चाहिये। शब्दों पर नहीं जाना चाहिये, क्योंकि यह एक अलंकार है-

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये, तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त। त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।१४।१।

पदार्थ- (ब्रह्म) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा ने (ह) सचमुच (देवेभ्यः) पंच भूतों या इन्द्रियों के लिये (विजिग्ये) विजय प्राप्त किया। (तस्य) उस (ह) ही (ब्रह्मणः) ब्रह्म के (विजये) विजय में (देवा) भूतों और इन्द्रियों ने (अमहीयन्त) महिमा प्राप्त की (ते) भूत और इन्द्रिय (ऐक्षन्त) विचारने लगे (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (विजयः) विजय (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (महिमा) महिमा, महत्ता, उत्कर्ष है(इति) ऐसा ।

भावार्थ- सर्वश्रेष्ठ महान् भगवान् की शक्ति से ये पंचभूत- पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां- घ्राण (नाक) रसना (रस लेने वाली), आंख, त्वचा और श्रोत्र, एवं पांच कर्म्मेन्द्रियां - हस्त, पाद, वाणी, पायु (मल त्यागने वाली), और उपस्थ (मूत्र त्यागने वाली) , अपने-अपने कार्यों में सफल होती हैं। ब्रह्म की सहायता के बिना कोई भी इन्द्रिय अपने कार्य में सफल नहीं हो सकती; न ही ये भूत कुछ कर सकते हैं। किन्तु अज्ञान से इन्द्रियों ने यह विचार कर लिया, कि जितना विजय अपने कार्य्यों में हमें प्राप्त होता है, वह हमारे ही सामर्थ्य से है, इसमें और कोई भी सहायक होता

है, वह सब हमारे लिये ही है। भाव यह है कि प्रकृति के अन्दर भी परमात्मा के व्यापक होने से संसार के सब कार्य चलते हैं। जिस प्रकार शरीर में जीव के रहते हुए शरीर के सब कार्य होते हैं, सब इन्द्रियां कार्य करती हैं, जीवात्मा के बिना शरीर और इन्द्रियां कुछ भी नहीं कर सकतीं; इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत, आदि भी, अपने भीतर परमात्मा के व्यापक होने से, सब कार्य कर सकते हैं। और जब परमात्मा रोक देते हैं, तो वे कोई भी कार्य नहीं कर सकते। परिछिन्न (सीमित) होने के कारण आत्मा शरीर में प्रविष्ट होता और निकलता है, इससे शरीर का कार्य करना और कार्य करने में असमर्थ होना प्रतीत होता रहता है। किन्तु संसार के मूर्ख जन यह मानते हैं कि ये सब कार्य प्रकृति अपनी ही शक्ति से करती है, प्रकृति के अतिरिक्त और कोई प्रकृति अपनी ही शक्ति कार्य करने वाली नहीं है। ऐसे लोगों की भ्रान्ति को हटाने के लिये यह कहा गया है कि ब्रह्म की सहायता के बिना भूतों में कुछ भी करने का सामर्थ्य नहीं है। १।

आगे अलंकार से यह समझाते हैं, कि भूतों और इन्द्रियों के इस अंहकार के संहार के लिये परमात्मा ने क्या किया-

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ।१५ ।२

पदार्थ-ब्रह्म ने (तत्) इस विचार को(ह) सचमुच (एषाम्) इनके (विजज्ञौ) जान लिया (तेभ्यः) उन के लिये (ह) मानों (प्रादुर्बभूव) प्रादुर्भूत हुआ (तत्) उसको (न) नहीं (व्यजानन्त) उन्होंने विशेषतया जाना (किम्) क्या (इदम्) यह (यक्षम्) पूजने और उपासने योग्य तत्व है (इति) (वाक्य समाप्ति दिखाने के लिये)।

भावार्थ- वह परमात्मा, इन भूतों और इन्द्रियों के विचार को जानकर, और कि इन भूतों और सूर्य आदि को शक्तिमान् और प्रकाशवान् देखकर मनुष्य कहीं भ्रम में न हो जायें, और अपनी-अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये उन्हें ही अपना पूजने योग्य उपास्य न मान

बैठें, भूतों के बीच प्रादूर्भूत हुआ। किन्तु भूतों ने उस यज्ञ को, कि जिसके सामने इनका प्रकाश और शक्ति मन्द पड़ गई थी, सर्वथा न पहचाना कि यह क्या पदार्थ है। अभिप्राय यह है कि जिस समय सब इन्द्रियां सुख के लिये चेष्टा करती हैं और मनुष्य यह मानने लगता है कि आंख आदि इन्द्रियों से ही सुख होता है, उस समय सुषुप्ति की दशा में परमात्मा जीवों पर प्रकट होते हैं, जिसके कारण इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले समस्त वैषयिक सुख दब जाते हैं। परमात्मा के उस आनन्द स्वरूप को, जो जीव को सुषुप्ति दशा में प्राप्त होता है, इन्द्रियां नहीं जान पातीं, और वे एक दूसरे से पूछती हैं। २।

ते अग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ।१६ ।३ ।

पदार्थ- (ते) वे त्वचा आदि इन्द्रिय (अग्निम्) अग्नि की बनी इन्द्रिय आंख को (अब्रुवन्) कहने लगीं (जातवेदः) हे सब उत्पन्न पदार्थों के जानने वाली ! (एतत्) इसको (विजानीहि) विशेष रूप से ज्ञात कर (किम्) क्या (एतत्) यह (यक्षम्) अद्‌भुत यक्ष है (इति) ऐसा। (अग्नि ने उत्तर दिया) (तथा+इति) तथास्तु, बहुत अच्छा।

भावार्थ- सब इन्द्रियों ने आश्चर्यचकित होकर आंख से कहा कि हे समस्त जगत के पदार्थों के स्वरूप को ज्ञात कर सकने वाली आग =आंख ! क्या तू जानती है , यह क्या वस्तु है, इसके गुण क्या हैं, इसका बल क्या हैं ? तात्पर्य्य यह कि सुषुप्ति की दशा में जीव ब्रह्म के संसर्ग से वह आनंद प्राप्त करता है, जो आनन्द इन्द्रियों के द्वारा संसार के किसी वस्तु से नहीं मिल सकता। तब सब इन्द्रियां आंख से पूछती हैं कि तू बतला सकती है कि जिससे यह आनन्द प्राप्त हुआ है, यह क्या वस्तु है ?

प्रश्न- उपनिषत् में 'अग्नि' शब्द है उसके अर्थ आपने आंख किस तरह किये ?

उत्तर- कारण और कार्य्य में एक से गुण होते हैं, जैसे सुवर्ण

तथा उसके बने आभूषणों में एक से गुण होने के कारण सुवर्ण के आभूषणों को सुवर्ण के भाव ही खरीदते हैं ऐसे ही अग्नि और आंख में कारणकार्य्य भाव सम्बंध है, इस वास्ते उपचार से दोनों को एक ही माना जाता है।

अगले वचनों में भी जहां वायु आदि की चर्चा है, ऐसा समझ लेना चाहिये ।३।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति। अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जात वेदावा अहमस्मीति। १७। ४।

पदार्थ- (तत्) उस ब्रह्म के सामने (अभि+अद्रवत्) दौड़ कर आया, अर्थात् कार्य्यरूप में उपस्थित हुआ (तम्) उस अग्नि को (अभि+अवदत्) ब्रह्म ने कहा (कः) कौन (असि) तू है (इति) ऐसा, (अग्निः) तेज, अग्नि (वै) ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (इति) ऐसा (अब्रवीत्) वह अग्नि बोला (जातवेदाः) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के रूप को दिखाने वाला (वै) ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (इति) ऐसा।

भावार्थ- जब ब्रह्म को देखने के लिये सूक्ष्म अग्नि स्थूल अर्थात् आंख की अवस्था में गई, तब ब्रह्म ने उससे पूछा - तू कौन है? आंख ने कहा- मैं अग्नि हूं और संसार में जितने रूपवान पदार्थ हैं उन सबको जानने वाली हूं, प्रत्येक प्रकार के धन और चमकदार पदार्थों का उपादान कारण भी मैं ही हूं। *

---

* उपनिषदों में कार्य्य करण की चर्चा प्रायः आती है, अतः संक्षेप से उसके विषय में थोड़ा सा लिख देते हैं। ताकि पाठकों को समझने में सुविधा हो—

बनी हुई वस्तु को कार्य्य कहते है। जिस सामग्री से वह बने और जिसके न होने पर वह न बन सके, वह कारण कहाता है। यह ध्यान में रहे कि कारण नियमपूर्वक अवश्यमेव कार्य्य से पूर्व होता है। कारण तीन प्रकार का होता है—१. समवायि (उपादान) २. असमवायि और ३. निमित्त।

समवायि (उपादन) कारण—जिस वस्तु से कोई चीज बनाई जाए उसे समवायि (उपादान) कारण कहते हैं। जैसे सोने से कुण्डल बनते हैं। सोना कुण्डल का, मिट्टी का प्याला आदि का समवायि (उपादान) कारण है। उपादान कारण द्रव्य ही होता है।

प्रश्न- जब ब्रह्म निराकार है, तो उसका अग्नि से प्रश्न करना कैसे संभव हो सकता है ? और जड़ ज्ञान रहित अग्नि उसका उत्तर कैसे दे सकता है ?

उत्तर- यह अलंकार है। इस अलंकारिक कथा से यह समझना अभीष्ट है कि ब्रह्म की सहायता के बिना अग्नि आदि में कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। जिस प्रकार चुम्बक-पत्थर के समीप होने से लोहा चलने लगता है, इसी प्रकार ब्रह्म की शक्ति से ये सब भूत और इन्द्रियां कार्य करती हैं, ब्रह्म के बिना कुछ भी नहीं कर सकतीं।

यक्ष और अग्नि के प्रश्नोत्तर केवल समझाने के लिये हैं, वास्तविक नहीं है। शब्द की अपेक्षा भाव तात्विक है, यह बात पूर्व भी कही जा चुकी है। इसका वास्तविक अभिप्राय जीव, जिस समय समाधि की अवस्था में इन्द्रियों की सहायता के बिना ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है उस समय की दशा को ही प्रकट करता है।४।

तस्मिंत्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदं ᳫं सर्वं दहेयम्। यदिदं पृथिव्यामिति। १८। ५।

पदार्थ- (तस्मिन्) उस (त्वयि) तुझ में (किम्) क्या (वीर्य्यम्) शक्ति अथवा सामर्थ्य (इति) यह कहा। (अग्नि ने जवाब दिया)

असमवायि कारण—कारण में रहता हुआ जो कार्य्य का कारण हो वह असमवायि कारण होता है। जैसे जब तक मिट्टी के अवयवों में संयोग न हो तब तक प्याला नहीं बन सकता। इससे संयोग भी प्याले का कारण हुआ।

यह संयोग प्याले का कारण है और रहता प्याला के कारण मिट्टी में है। यह स्मरण रहे कि असमवायि कारण या गुण होगा, या क्रिया।

निमित्त कारण—समयवायि और असमवायि से भिन्न कारण को निमित्त कारण कहते हैं, इसमें कर्त्ता और साधन दोनों आ जाते हैं, जैसे प्याला बनाने वाला कुम्हार और प्याला बनाने के हथियार।

इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो सभी कार्य्यों के एक समान कारण हैं उनको साधारण कारण भी कहते हैं। जैसे—काल, देश, ईश्वर, अदृश्य।

जब कोई भी चीज बनेगी, किसी न किसी देश या काल में बनेगी, इस वास्ते देश और काल सबके कारण हैं, इसी प्रकार शेष पदार्थों के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

(अपि) चाहूं तो (इदम्) इस (सर्वम्) सबको, संसार के सब पदार्थों को (दहेयम्) जला दूं (यत्) जो (इदम्) यह (पृथिव्याम्) पृथिवी पर अर्थात् ब्रह्माण्ड में है (इति) वाक्य समाप्ति।

भावार्थ- ब्रह्म ने अग्नि से पूछा- तेरी क्या शक्ति है? अग्नि ने उत्तर दिया कि इस संसार अर्थात् ब्रह्माण्ड के किसी भी भाग में जो कुछ दीखता है, चाहे वह किसी भी ग्रह या तारा में हो, मैं सबको जला सकता हूं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मेरी शक्ति से बाहर हो।

इसका भाव यह है कि यदि अग्नि की सारी शक्ति एकत्र हो कर यत्न करे, तो संभव है कि संसार की सब वस्तुओं को जला दे। यद्यपि बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो (वर्त्तमान दशा वाले) अग्नि से नहीं जल सकते, तथापि अग्नि की सामूहिक शक्ति के सामने कोई ऐसी वस्तु नहीं जो जल न सके। किन्तु अग्नि का समुदित होना आग्नेय परमाणुओं के कारण शक्य नहीं, वरन् परमात्मा के सामर्थ्य से ऐसा होता है। यदि परमात्मा अग्नि के परमाणुओं का संयोग न करे तो कुछ भी न जल सके। इसके सम्बंध में आगे लिखते हैं। ५ ।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं, स तत एव निववृते, नैंतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति। १६। ६।

पदार्थ- ब्रह्म ने (तस्मै) उस अग्नि के आगे (तृणम्) एक तिनका (निदधौ) धर दिया (और उसको कहा) (एतत्) इसको (दह) तू जला (इति) ऐसा। अग्नि (तत्) उस तिनके (उपप्रेयाय) समीप गया (सर्वजवेन) पूरे वेग से (तत्) उसको (न) नहीं (शशाक) सका (दग्धुम्) जला। (सः) वह अग्नि (ततः) वहां से (निववृते) लौट आया (और कहा) (न) नहीं (एतत्) इसको (अशकम्) सका (विज्ञातुम्) जान, (यत्) जो (एतत्) यह (यक्षम्) पूजने योग्य (इति) ऐसा।

भावार्थ-ब्रह्म ने अग्नि के सामने एक तृण रख दिया, किन्तु वह

सूक्ष्म अग्नि, कार्यावस्था में न होने के कारण, उस तिनके को जिसे ब्रह्म ने जलाने के लिये कहा, न जला सका। तब उसे छोड़ कर अग्नि ने अन्य देवों से कहा कि मैं इस पूज्य शक्ति को नहीं जान सका।

प्रश्न- क्या यह बात संभव हो सकती है कि आग से एक तिनका भी न जल सके, क्योंकि अग्नि तो ढेर के ढेर जला देती है।

उत्तर- सूक्ष्म अग्नि तो प्रत्येक पदार्थ में रहती है, किन्तु वह किसी को जला नहीं पाती। हां, परमात्मा जब उसको कार्य्यावस्था में लाता है तब उसमें जलाने का सामर्थ्य आ जाता है। जब परमात्मा अग्नि को मूल दशा-परमाणु रूप- में कर देते हैं। तब उसमें जलाने का सामर्थ्य सर्वथा नहीं रहता। अतः अग्नि से तिनके का न जलना असंभव नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि प्रत्येक भूत में जो सामर्थ्य दीखता है वह सब परमात्मा का दिया हुआ है। जब परमात्मा इन भूतों को सहायता न दें तब जिस तरह मृतक शरीर कुछ नहीं कर सकता उसी तरह, यह भूत भी कुछ नहीं कर सकते। ६ ।

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति, तथेति।। २०। ७।।

पदार्थ- (अथ) **इसके बाद अर्थात् अग्नि की शक्ति ज्ञात होने के पश्चात् (वायुम्) हवा को (अब्रुवन्) देवों ने कहा। (वायो) हे वायु! (एतत्) इसको (विजानीहि) तू मालूम कर (किम्) क्या (एतत्) यह (यक्षम्) पूजनीय (इति) ऐसा-**

भावार्थ-जब अग्नि ब्रह्म को न जान सका अर्थात् आंख से ब्रह्म का ज्ञान न हुआ तब देवों अर्थात् इन्द्रियों ने वायुजन्य इन्द्रिय अर्थात् त्वचा से पूछा क्या तुम जानती हो कि वह पूजनीय वस्तु क्या है? जहां आंख से किसी पिंड को नहीं देख सकते, वहां स्पर्श करके देखते हैं। मूर्ख अज्ञानी इन्द्रियों को दर्शन आदि क्रियाओं में स्वतंत्र समझते हैं, किन्तु यह बात शुद्ध नहीं है। इन्द्रियां दर्शन आदि क्रियाओं में

स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय को दूसरे की सहायता की अपेक्षा होती है ।७।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ।२१ ।८ ।

पदार्थ- वह वायु (तत्) उस ब्रह्म की (अभि+अद्रवत्) ओर दौड़ा अर्थात् सामने आया। (तम्) उसकी (अभि+अवदत्) ब्रह्म ने कहा (कः) कौन (असि) तू है (इति) ऐसा। (वायुः) वायु (वै) निश्चय से (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) यह (अब्रवीत्) उसने कहा (मातारिश्वा) आकाश में जलने वाला (वै) सचमुच (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (इति) ऐसा-

भावार्थ- इसके पश्चात् ब्रह्मतत्व जानने के लिये वायु उसके सम्मुख हुआ। ब्रह्म ने उससे पूछा- तू कौन है ? उसने उत्तर दिया- मैं वायु हूँ। मैं समस्त आकाश में घूमने वाला मातरिश्वा भी कहाता हूं। वायु से तात्पर्य वायु का कार्य्य त्वग्-इन्द्रिय है। त्वग्-इन्द्रिय वायु के द्वारा ही शीत-उष्ण का अनुभव करती है। वायु के बिना त्वचा शीत-उष्ण का अनुभव नहीं करती। अतः त्वग्-इन्द्रिय वायु की इन्द्रिय है। और वायु से यहां तात्पर्य वही इन्द्रिय है। ८।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीद ँ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ।२२ ।९ ।

पदार्थ-(तस्मिन्) उस (त्वयि) तुझ में (किम्) क्या (वीर्य्यम्) शक्ति या सामर्थ्य है (इति) ऐसा (ब्रह्म ने कहा) (अपि) चाहूं तो (इदम्) इस (सर्वम्) समस्त जगत् को (आददीयम्) उठा ले जाऊं, उड़ा ले जाऊं (यत्) जो(इदम्) यह (पृथिव्याम्) भूमण्डल पर है (इति) ऐसा।

भावार्थ- ब्रह्म ने वायु से पूछा- तुझ में क्या शक्ति है ? उत्तर दिया - जितनी वस्तुएं इस संसार में हैं उन सबको उठा सकता हूं। अर्थात् संसार में जितने छोटे-बड़े पदार्थ हैं उन सबको उठा सकता

हूं। अर्थात् संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो मेरी उठाने की शक्ति से बाहर हो।६।

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति, तदुपप्रेयाय सर्वजवेन, तन्न शशाकादातुं, स तत् एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति। २३ । १०।

पदार्थ- (तस्मै) उस वायु के आगे (तृणम्) तिनका (निदधौ) रख दिया। (एतत्) इसको (आदत्स्व) उठा ले जा या उड़ादे (इति) ऐसा। (यह सुन कर) वह (तत्) उसके (उपप्रेयाय) समीप गया (सर्वजवेन) पूर्ण शक्ति से, (न) न ही(शशाक) सका (आदातुम्) उठा। (सः) वह (तत्) वहां से (एव) ही (निववृते) लौट आया (न) नहीं (एतत्) इसको (अशकम्) सका (विज्ञातुम्) जान (यत्) जो (एतत्) यह (यक्षम्) पूजने योग्य (इति) ऐसा।

भावार्थ- वायु की इस गर्वोक्ति को कि वह संसार के प्रत्येक पदार्थ को उड़ा सकती है, सुनकर ब्रह्म ने वायु के सामने एक तिनका रखा और कहा- इसे उठाओ या उड़ाओ। वायु पूरी शक्ति से, उड़ाने के लिए, उसके पास गया, किन्तु पूरा बल लगा कर भी उसे उड़ा न सका। यह अनुभव कर वायु उसके पास से हट गया और कहा मैं नहीं जान सकता कि क्या वस्तु है? तात्पर्य यह है कि स्पर्शेन्द्रिय पूरा बल लगाकर भी ब्रह्म को नहीं जान सका।

जब ये दो प्रबल इन्द्रियां ब्रह्म को जानने में असफल हुई, और दूसरी कोई भौतिक वस्तु को जानने योग्य प्रतीत ही न हुई, तब इन्द्रियों ने मिलकर अपने राजा इन्द्र=जीवात्मा से कहा- हम तो इस पूजने योग्य को नहीं जान सकते-

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति, तदभ्यद्रवत्, तस्मात् तिरोदधे।२४।११।

पदार्थ- (अथ) इसके बाद, अग्नि और वायु का असामर्थ्य ज्ञात

होने के पश्चात् (इन्द्रम्) इन्द्रियों के राजा, जीवात्मा इन्द्र को (अब्रुवन्) कहा (मघवन्) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न ! तेज और मान के स्वामिन् ! (एतत्) इसको (विजानीहि) जान (किम्) क्या (एतत्) यह (यक्षम्) तेजःस्वरूप पूजनीय है (इति) ऐसा (इन्द्र ने कहा) (तथा+इति) बहुत अच्छा। इन्द्र+जीवात्मा (तत्) उसके (अभि+अद्रवत्) सामने गया किन्तु वह ब्रह्म (तस्मात्) उससे (तिरोदधे) ओट में हो गया, छिप गया।

भावार्थ- जब आंख और त्वचा की अशक्ति का ज्ञान होने पर इन्द्रियों ने जीवात्मा से कहा कि हम तो इसे नहीं जान सकते, तू इसे मालूम कर, तब जीवात्मा इन्द्रियों से पृथक् होकर ब्रह्म को देखने गया। किन्तु वह यक्ष अर्थात् पूजनीय तेजः स्वरूप इस जीवात्मा से, अत्यन्त समीप होता हुआ भी, छिप गया। जैसे आंख प्रत्येक पदार्थ को देखती है किन्तु उसके अत्यन्त समीप रहने वाला अञ्जन=सुरमा उससे ओझल ही रहता है अर्थात् आंख उसे नहीं देख पाती, ऐसे ही सुषुप्ति की दशा में सब इन्द्रियों को छोड़कर भी जीव ब्रह्म के जानने में असफल ही रहा।११।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं, ता ꣳ होवाच किमेतद्यक्षमिति। २५। १२ ।

पदार्थ- (सः) वह इन्द्र=जीवात्मा (तस्मिन्) उस (एव) ही (आकाशे) आकाश में अर्थात् हृदय में, जहां ब्रह्म छिप गया था (स्त्रियम्) एक स्त्री को (आजगाम्) मिला (बहुशोभमानाम्) अत्यन्त सजी हुई (उमाम्) बुद्धि (हैमवतीम्) सुवर्ण के आभूषणों से कहा, पूछा (किम्) क्या (एतत्) यह (यक्षम्) पूजनीय (इति) ऐसा।

भावार्थ- जब सुषुप्ति दशा के समान जीव इन्द्रियों से पृथक् होकर ब्रह्म की खोज करने लगा, तब समाधि की दशा में सबका ज्ञान कराने वाली बुद्धि उसे मिली, वह ब्रह्म ज्ञान रूपी आभूषणों से आभूषित होने के कारण बहुत ही शोभासौन्दर्य प्राप्त कर चुकी थी

और प्रत्येक प्रकार की सिद्धियों के अलंकारों से वह अलंकृत थी। जीवात्मा=इन्द्र ने इसको देखकर उसी से प्रश्न किया— यह पूज्य तेजःस्वरूप यक्ष क्या वस्तु थी ? जिसको जानने में सारी इन्द्रियां अपना पूरा बल लगा कर भी असफल रहीं, जिसको मैं भी न जान सका ? यह क्या है ?

भाव यह है कि परमात्मा का ज्ञान न तो इन्द्रियों को ही हो सकता है। और न ही साधन-विहीन जीवात्मा परमात्मा को जान सकता है। समाधि के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न होने वाली या तीव्रतम वैराग्य से उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान हो सकता है। इसका वर्णन अगले खण्ड में किया जायेगा।।१२।।

केनोपनिषत् का यह तृतीय खण्ड समाप्त हुआ।

चतुर्थ खण्ड

अब जैसे बुद्धि ने ब्रह्म सुझाया, उसका उपदेश करते हैं-

सा ब्रह्मेति ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो विदां चकारब्रह्मेति।२६। १।

पदार्थ- (सा) उस बुद्धि ने (ब्रह्म) वह ब्रह्म है (इति) ऐसा (उवाच) कहा। (ब्रह्मणः) ब्रह्म के (वै) ही (एतद्विजये) इस विजय में (महीयध्वम्) तुम महत्व प्राप्त करते हो (इति) ऐसा। (ततः) उस से (विदांचकार) जीव ने जाना कि वह यक्ष (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इति।

भावार्थ-ब्रह्म विद्या ने जो शुद्ध बुद्धि का फल है जीवात्मा को सुझाया कि सब देवों अर्थात् इन्द्रियों की जो सफलता है, वह ब्रह्म की सफलता है, और ब्रह्म के कारण ही सब इन्द्रियों की यह महिमा हुई है। इन्द्रियां जड़ अर्थात् ज्ञान से शून्य हैं और ज्ञान के बिना किसी को सफलता नहीं मिल सकती। अतः ब्रह्म जब तक इनकी सहायता न करे तब तक ज्ञान किसी को नहीं हो सकता। ब्रह्म जब सहायता

करते हैं तो जीव को मेधा नामक बुद्धि देते हैं, जिसके द्वारा जीव अपने स्वरूप तथा ब्रह्म को जान कर मुक्ति प्राप्त करता है। जब तक मेधा बुद्धि प्राप्त न हो तब तक किसी दूसरे उपाय से ब्रह्म को हम नहीं जान सकते। अतः जहां तक हम यत्न कर सकते हैं हमें वेदों के अभ्यास अर्थात् बार-बार विचार और परमात्मा की उपासना से वह बुद्धि प्राप्त करनी चाहिये।१।

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्टं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथममो विदांचकार ब्रह्मेति२७। २।

पदार्थ- (तस्मात्) इस कारण (वै) ही (एते) ये (देवाः) देव=इन्द्रियां, अग्नि आदि भूत (अतितराम्) श्रेष्ठ हैं (इव) इस तरह (अन्यान्) दूसरे (देवान्) देवों की अपेक्षा (यत्) जो (अग्नि) अग्नि, आंख, (वायुः) वायु, त्वगिन्द्रिय (इन्द्रः) जीवात्मा हैं (ते) इन्होंने (हि) ही (एनत्) इस पूजनीय ब्रह्म को (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप होकर (पस्पशुः) मानों स्पर्श करके ज्ञात किया। (ते) इन्होंने (हि) ही (एनत्) इसको (प्रथमः) पहले (विदांचकार) जाना कि वह (ब्रह्म+इति) ब्रह्म है।

भावार्थ-आंख, त्वचा और जीवात्मा सबसे पहले उस ब्रह्म को अत्यन्त समीपता से स्पर्श करते अर्थात् उसके गुणों को ज्ञात करते हैं। उनके द्वारा ही दूसरी इन्द्रियां भी ब्रह्म के गुणों से परिचित होती हैं। आंख और त्वचा दूसरी इन्द्रियों से इसी कारण श्रेष्ठ हैं कि वह अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा पहले सृष्टि में ईश्वर के गुणों को मालूम करती हैं। इन्द्रियां स्वयं तो ब्रह्म के जानने के समर्थ नहीं है और न ही जीवात्मा पर निरपेक्ष, स्वतः जान सकता है, वरन् शुद्ध बुद्धि से जो मल=मन की अपवित्रता, विक्षेप=चञ्चलता, आवरण=अज्ञानजन्य परदा- इन दोषों के दूर होने से समाधि के अभ्यास से प्राप्त होती है, ब्रह्म का ज्ञान होता है। अन्य अवस्थाओं में ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता।२।

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान्, स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति।२८ । ३।

पदार्थ- (तस्मात्) इस कारण से (वै) ही (इन्द्रः) जीवात्मा (अतितराम्) श्रेष्ठता प्राप्त करता है (अन्यान्) दूसरे (देवान्) देवों से, (सः) वह जीवात्मा (हि) सचमुच (एनत्) इस ब्रह्म को (नेदिष्ठम्) बहुत समीप से (पस्पर्श) अनुभव किया (सः) उसने (हि) ही (एनत्) इस ब्रह्म को (प्रथमः) सब से पूर्व (विदांचकार) जाना कि वह पूजनीय यक्ष (ब्रह्म+इति) ब्रह्म है।

भावार्थ- चूंकि इन्द्रियां जीवात्मा के बिना ब्रह्म को अनुभव नहीं कर सकतीं; केवल जीवात्मा ही शुद्ध बुद्धि की सहायता से परमात्मा के रचित पदार्थों को जानकर उनसे लाभ उठाता है। अतः जीवात्मा सब इन्द्रियों से श्रेष्ठ है। एक-एक इन्द्रिय के शरीर से पृथक् हो जाने पर शरीर सर्वथा हेय=निकम्मा नहीं हो जाता, अन्धा या अन्य किसी इन्द्रिय से विकल होता हुआ भी अपने कार्य को करता चला जाता है, किन्तु जीवात्मा के पृथक् हो जाने पर, समस्त इन्द्रियों के होते भी कार्य नहीं हो सकता। कई लोगों को सन्देह हो सकता है कि इन्द्रियों के बिना जीवात्मा क्या कार्य कर सकता है ? किन्तु विचारशील मनुष्य अच्छी तरह जानते हैं कि जीवात्मा का जो अपना कार्य है, वह इन्द्रियों के बिना भी पूरा हो सकता है। शेष कार्य शरीर के हैं, उनको सम्पादन करने के लिये इन्द्रियों की आवश्यकता है। अर्थात् जीवात्मा अपने कार्य में परनिरपेक्ष है।

प्रश्न- जीवात्मा का कौन सा कार्य है जो इन्द्रियों के बिना पूरा हो सकता है, हम तो कोई कार्य भी इन्द्रियों के बिना होता नहीं देखते।

उत्तर- जीवात्मा का काम आनन्द भोगना है, सो वह उसी अवस्था में हो सकता है, जब जीवात्मा का इन्द्रियों से सम्बंध न हो। अतः समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति तीनों अवस्थाओं में जब कि

जीवात्मा परमात्मा के मिलाप से आनन्द भोगता है, तब उसका इन्द्रियों से सम्बंध होता है, उस दिशा में उसे ब्रह्मानन्द नहीं मिलता।

प्रश्न- क्या कारण है कि जीव को, इन्द्रियों के साथ सम्बंध होने की दशा में आनन्द नहीं मिलता ?

उत्तर- चूंकि इन्द्रियों के द्वारा बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है। और बाह्य पदार्थ सभी प्राकृतिक हैं, प्रकृति में आनन्द है ही नहीं, अतः इन्द्रियों के द्वारा आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न- जब इन्द्रियों के द्वारा विषयों के सम्बंध से जीव को आनन्द नहीं आता, तो क्यों इन्द्रियां जीव को विषयों में लगाती हैं ?

उत्तर- चूंकि इन्द्रियां प्राकृतिक (भौतिक) हैं, अतः वे अपने समान भौतिक पदार्थों से ही सम्बंध करती है।

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इतीति न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम्। २६। ४।

पदार्थ- (तस्य) उस ब्रह्म का (एषः) यह बाह्य (आदेशः) उपदेश है (यत्) जो (एतत्) यह (विद्युतः) बिजलियां (व्यद्युत्) चमकती और छिपती हैं (आ+इति) यथा, (न्यनीमिषत्) आंख बन्द और खुलती हैं (आ) यथा (इति) यह (अधिदेवतम्) अधिदैविक है, ब्रह्म इसी प्रकार प्रकट होता और छिप जाता है।

भावार्थ- पूर्वोक्त विषय को सिद्ध करने के लिये कहते हैं, वह परमात्मा ज्ञानी अर्थात् कर्मनिष्ठ विद्वान मनुष्यों को सर्वत्र दिखाई देता है। मूर्ख कर्म्मशून्य लोग उसे मालूम नहीं कर सकते। इस वास्ते वह उनसे गुप्त है। इस ब्रह्म का उपदेश ऐसा ही है जैसे विद्युत चमक कर छिप जाती है, या जिस प्रकार आंख का बन्द होना और खुलना (निवेष, उन्मेष) है। इसी तरह ब्रह्म के प्रकट होने और छिप जाने को अलंकार के द्वारा वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को न तो अज्ञानी ही समझ पाते हैं क्योंकि

वे उसे इन्द्रियों से देखना चाहते हैं। और न ही अकर्माज्ञानी उसे अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि उनके पास केवल वाचिक ज्ञान है। कथनी है, करनी नहीं है। कथनी के अनुसार उनकी करनी नहीं होती, विद्या के अनुसार क्रिया नहीं होती। केवल कर्म्मठ ज्ञानी ही उसे प्राप्त करते हैं। संसार में ब्रह्मशक्ति विद्युत की भांति चमक कर छिप जाती है। अर्थात् जिस समय मनुष्य एक विषय को छोड़कर दूसरे विषय में लगता है तो दोनों विषयों के बीच के समय में उसका ब्रह्म के साथ सम्बंध होता है।४।

अथाध्यात्मम्, यदेतद्गच्छतीक च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः। ३०। ५।

पदार्थ- (अथ) अब (अध्यात्मम्) आत्मा के सम्बंध में सुनिये। (यत्) जो (एतत्) यह (गच्छति+इव) चलती सा है (च) और (मन) मन को (अनेन) इससे (च) और (एतत्) यह (उपस्मरति) समीप होकर स्मरण करे (अभीक्ष्णम्) बार-बार, हर क्षण (संकल्प) मानसिक विचार।

भावार्थ- इन्द्रियों और उनके सहायक देवों को जानने के बाद मनुष्य को आध्यात्मिक कर्तव्य की पूर्ति के लिये सबसे महान् विद्वान् भगवान् की ओर मन को प्रतिक्षण भगवान् के ध्यान में लगाना और उसका सामीप्य प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि बाह्य विषयों को जो इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात होते हैं, पृथक् करके, मन में व्यापक भगवान् के ध्यान में लीन हो जाये, और मल विपेक्ष और आवरण - इन तीन दोषों को- जो अत्यन्त समीप होते हुए ब्रह्म को जीव से मानो दूर किये हुए हैं, कर्म, उपासना और ज्ञान के द्वारा दूर करके आत्मा को आत्मिक परम धाम तक पंहुचावे। अर्थात् मनुष्य को यह दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये कि मेरा मन सदा ब्रह्म की ओर चले; और ब्रह्म को त्याग कर, सांसारिक

ऐसे ही ईश्वरभक्ति के अभिलाषी नियमानुसार योगाभ्यासी के पास जाते हैं। यहां तक गुरू का उपदेश था। अब शिष्य पुनः प्रश्न करता है। और गुरू उसका समाधान करता है :—

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं बाव त उपनिषदमब्रूमेति ।३२ ।७ ।

पदार्थ- (उपनिषम्) उपनिषद् अर्थात् गुप्त रहस्य=ब्रह्मविद्या=यथार्थ ज्ञान को (भोः) हे गुरु जी (ब्रूहि) कहिये बतलाइये ।(इति) इति। (उक्ता) कह दिया गया (ते) तुझे (उपनिषत्) गुप्त रहस्य. परोक्ष पदार्थों का ज्ञान। (ब्राह्मीम्) ब्रह्मसम्बन्धी (बाव) ही (ते) तुझे(उपनिषदम्) गुप्तदान(अब्रूम) हमने कह दिया (इति) इति।

भावार्थ--शिष्य ने गुरू से प्रार्थना की हे गुरूजी ! आप मुझे ब्रह्मविद्या=यथार्थज्ञान का रहस्य बतला दीजिये। गुरू ने उत्तर दिया—ब्रह्मविद्या के सम्बन्ध में जितना ज्ञान मनुष्य धारण कर सकता है उतना मैं तुमको बतला चुका हूं। शिष्य ने प्रार्थना की —यदि इसमें कुछ शेष रह गया हो, तो कृपया वह बतला दीजिये। गुरू ने कहा कि मैं ब्रह्मविषयक पूरा-पूरा उपदेश तुझे कर चुका, अब कुछ बतलाना शेष नहीं हैं। सचमुच संसार में जितनी ब्रह्मविद्या है, उतनी तुम्हें बतला चुका। अब इसमें कुछ भी कहना शेष नहीं है।

प्रश्न- जब शिष्य को गुरू ने संपूर्ण ब्रह्मविद्या का उपदेश कर दिया था तब शिष्य को ब्रह्मविद्या में संदेह क्यों रहा, जिससे विवश होकर उसने कहा कि जो कुछ शेष हो उसका भी उपदेश कर दीजिए।

उत्तर— चूँकि यथार्थज्ञान श्रवण अर्थात् गुरू का उपदेश सुनने, मनन=उसकी युक्तियों को रात-दिन विचारने और निदिध्यासन = उस पर नियमपूर्वक आचरण करने से होता है; गुरू का उपदेश सुनना तो केवल श्रवण है, मनन और निदिध्यासन अभी नहीं हुआ था, अतः शिष्य को ब्रह्मविद्या का स्पष्ट ज्ञान नहीं हुआ, इसीलिये उसने गुरू से प्रश्न किया।७।

तस्यै तपो दमः कर्म्मेति प्रतिष्ठाऽवेदाः सर्वांगाणि सत्यामायतनम् ।३३। ८।

पदार्थ- (तस्यै) उसमें प्रवेश पाने के (तपः) तप करना अर्थात् भूख-प्यास, सरदी-गरमी को सहन करना (दमः) मन को वश में करना (कर्म) वेदानुसार आचरण करना (इति) यह (प्रतिष्ठा) आधार है (वेदाः) ऋग्, यजुः, साम और अथर्व चारों वेद (सर्वांगाणि वेद के सब अंग-उपांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दः, ज्योतिष और निरूक्त ये वेदांग हैं, और न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त - ये छः दर्शन वेद के उपांग हैं) (सत्यम्) सत्य बोलना, सत्य करना और सत्यस्वरूप परमात्मा के सहारे रहना (आयनतम्) रहने का स्थान है।

भावार्थ- ब्रह्मविद्या का पूरा उपदेश करके उसके प्राप्त करने के लिये आवश्यक साधनों का उपदेश करते हैं। ब्रह्म को जानने के लिए मल दोष को दूर करने के साधन 'तप' और 'दम' की आवश्यकता है। अर्थात् जब तक साधक इन्द्रियों की वासनाओं को नहीं दबा सकता और जब तक वेदानुसार आचरण नहीं मानता। तब तक मन को पाप कर्म्मों की वासना से पृथक् नहीं कर सकता। अतः प्रथम साधन तप और दम है। इसके पश्चात् विक्षेप दोष को दूर करने के लिए मन को रोकने की आवश्यकता है, जिससे वह चंचल न रह कर एकाग्र हो जाये। इसके लिए कर्म्म= ईश्वरोपासना के उपाय भोग के अनुष्ठान करने की आवश्यकता है। तत्पश्चात् आवरण दोष को दूर करने के निमित्त वेद ज्ञान की आवश्यकता है। वेदों का अभिप्राय ठीक-ठीक समझने के लिए अंगों और उपांगों का अच्छी तरह अभ्यास नहीं कर लेता तब तक वह वेदों को यथार्थ रूप से नहीं समझ सकता। और जब तक वेद को ठीक तौर पर न समझ ले तब तक उसको ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता। किन्तु यह ज्ञान तभी उपयोगी हो सकता है, जब इसके साथ सत्याचरण का सहयोग हो, क्योंकि सत्य ही इन

जीवात्मा परमात्मा के मिलाप से आनन्द भोगता है, तब उसका इन्द्रियों से सम्बंध होता है, उस दिशा में उसे ब्रह्मानन्द नहीं मिलता।

प्रश्न- क्या कारण है कि जीव को, इन्द्रियों के साथ सम्बंध होने की दशा में आनन्द नहीं मिलता ?

उत्तर- चूंकि इन्द्रियों के द्वारा बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है। और बाह्य पदार्थ सभी प्राकृतिक हैं, प्रकृति में आनन्द है ही नहीं, अतः इन्द्रियों के द्वारा आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न- जब इन्द्रियों के द्वारा विषयों के सम्बंध से जीव को आनन्द नहीं आता, तो क्यों इन्द्रियां जीव को विषयों में लगाती हैं ?

उत्तर- चूंकि इन्द्रियां प्राकृतिक (भौतिक) हैं, अतः वे अपने समान भौतिक पदार्थों से ही सम्बंध करती है।

तस्यैष आदेशो यदेताद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इतीति न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम्। २९। ४।

पदार्थ- (तस्य) उस ब्रह्म का (एषः) यह बाह्य (आदेशः) उपदेश है (यत्) जो (एतत्) यह (विद्युतः) बिजलियां (व्यद्युत्) चमकती और छिपती हैं (आ+इति) यथा, (न्यनीमिषत्) आंख बन्द और खुलती हैं (आ) यथा (इति) यह (अधिदैवतम्) अधिदैविक है, ब्रह्म इसी प्रकार प्रकट होता और छिप जाता है।

भावार्थ- पूर्वोक्त विषय को सिद्ध करने के लिये कहते हैं, वह परमात्मा ज्ञानी अर्थात् कर्मनिष्ठ विद्वान मनुष्यों को सर्वत्र दिखाई देता है। मूर्ख कर्म्मशून्य लोग उसे मालूम नहीं कर सकते। इस वास्ते वह उनसे गुप्त है। इस ब्रह्म का उपदेश ऐसा ही है जैसे विद्युत चमक कर छिप जाती है, या जिस प्रकार आंख का बन्द होना और खुलना (निवेष, उन्मेष) है। इसी तरह ब्रह्म के प्रकट होने और छिप जाने को अलंकार के द्वारा वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को न तो अज्ञानी ही समझ पाते हैं क्योंकि

ओ३म्

अथ केनोपनिषत्सार

ईशोपनिषत्सार में बतलाया जा चुका है कि ईशोपनिषत् सब उपनिषदों का मूल है, शेष सब उपनिषदें इसकी व्याख्या सी हैं। ब्रह्मविद्या का सार ब्रह्मज्ञान है और उसमें भी मुख्य बात ब्रह्म की सर्वव्यापकता अनेक उपायों से ईशोपनिषत् में समझाई गई है। उस प्रसंग में कहा है-

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद् आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपोमातरिश्वा दधाति।।

केनोपनिषत् एक प्रकार से इस मंत्र का विस्तृत भाष्य है। केनोपनिषत् चार खण्डों में है। इनमें दूसरा खण्ड सबसे छोटा किन्तु गहन है।

पहले खण्ड में संसार के निमित्त कारण परमात्मा का बोध एक विचित्र प्रकार से कराया गया है, साधारण जन प्रत्यक्षवादी होते हैं, वे उसे ही मानते हैं, जिसका उन्हें अपनी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष ज्ञान हो, वे उस वस्तु को स्वीकार करने का तैयार नहीं होते, जो उनकी इन्द्रियों का विषय न हो सके। उनका कथन है कि आंख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियां मनुष्य को ज्ञान कराने के लिये हैं। यह कैसे हो सकता है कि ऐसे विषय भी हों जिनको मनुष्य इन ज्ञान के साधनों से न जान सके। निःस्सन्देह, इन्द्रियों की शक्ति अल्प है किन्तु मनुष्य ने अपनी बुद्धि बल से इनकी शक्ति बढ़ाने वाले साधन तैयार कर लिए हैं। कल तो जो पदार्थ अदृश्य (न देखने योग्य) माने जाते थे। आज इन साधनों की सहायता से वे स्पष्ट दीखने लग गये हैं। अतः आजकल की पदार्थविद्या से उत्तेजना पाकर साधारण मनुष्य बलपूर्वक कहता है कि हम ऐसे किसी पदार्थ को मानने को तैयार नहीं, जो

इन इन्द्रियों या चर्मचक्षुओं से दिखाई न दे। तुम्हारा कल्पित ईश्वर परमात्मा तथा आत्मा न तो दिखाई देते हैं। और न ही पदार्थविद्या के आविष्कृत सूक्ष्म यंत्रों से देखने में आते हैं।

अतः हम उनकी सत्ता को स्वीकार नहीं करते। तलवकार ऋषि जिनकी यह केनोपनिषत् रचना है, ऐसे ढंग से इसका समाधान करते हैं कि मानते ही बनता है। मानों उनके मन में है कि हे प्रत्यक्षसाधनानि, परोक्षद्वेषिन् ! सुन और बता- यानि हि इन्द्रियाणि प्रत्यक्षसाधनानि, तानि हि नो प्रत्यक्षाणि = जो इन्द्रियां प्रत्यक्ष का साधन है, वे स्वयं ही प्रत्यक्ष नहीं है। क्या तूने कभी आंखों को, जो सब रूपवान् और रूपों को दिखाती हैं,, देखा है। सच कहना, क्या सब शब्दों का ज्ञान कराने वाले कान को तूने कहीं देखा है। सुगंध-दुर्गंध का बोध कराने वाली नाक को तूने कभी सूंघा है। सब स्वादों का पता देने वाली रसना का रस तूने कभी लिया है। शीत उष्ण का भान कराने वाली त्वगिन्द्रिय को तूने कभी छू के देखा है। अरे भैय्या, जिनको तू देख रहा है वह तो इन्द्रियों के गोलक हैं, इन्द्रियों के रहने का ठिकाना है, इन्द्रियां नहीं हैं। बता, तेरे प्रत्यक्ष को कैसे प्रमाण माने ? तू पदार्थविद्या के सहारे बताता है सूर्य्य पृथ्वी से बहुत बड़ा है, किन्तु आंख से तो सूर्य्य पृथिवी की अपेक्षा अत्यन्त छोटा दीखता है। तेरे प्रत्यक्ष का तो यह हाल है, उसे ही केवल प्रमाण कैसे मानें ?

ऋषियों ने ठीक कहा है—'परोक्षप्रिया इव हि देवा, प्रत्यक्षद्विषः, देव—ज्ञानी लोग परोक्ष से प्रेम करते हैं, प्रत्यक्ष तो बहुधा भ्रामक होता है। ऋषि मानो चोट करते हुए पूछता है—तू सुख से सुखी, दुःख से दुःखी होता है, कहां है सुख-दुःख ? या तो सुख-दुःख की सत्ता का अपलाप करो या प्रत्यक्ष के अतिरिक्त और प्रमाणों की सत्ता मानो। सुख-दुःख की सत्ता का तुम अपलाप कर नहीं सकते, क्योंकि सुख-प्राप्ति और दुःखनाश के लिए ही तुम्हारी सब चेष्टायें हैं। अतः सुख-दुःख की सत्ता मानने में लिये दूसरे प्रमाणों का मानना अनिवार्य्य है।

अच्छा, देखो, संसार में कार्य्य कारण की श्रृंखला कार्य्य कर रही है। घड़ा कार्य्य है। मिट्टी उसका कारण है। मिट्टी के अवयवों के अवयव करते चले जाओ, अर्थात् स्थूल कार्य्य को सूक्ष्म कारण में परिणित करते चले जाओ, अन्त में ऐसी अवस्था आजायेगी, जिसके आगे अवयव नहीं हो सकते। वह मिट्टी का अति सूक्ष्म अवयव न तो आंखों से दिखाई देता है और न किसी यन्त्र से। क्या उसकी सत्ता इन्कार करोगे ? करो इन्कार! फिर तुम्हारा यह संसार कहां से आया ? कार्य्य कारण की श्रृङ्खला बलात् प्रत्यक्ष से अतिरिक्त प्रमाणों को मनवा देती है। न मानो तो मिट्टी के सूक्ष्म कारण की सत्ता का क्या प्रमाण ?

और देखिये मिट्टी से घड़ा क्या अपने आप बन जाता है। कट्टर से कट्टर प्रत्यक्षवादी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता है। मिट्टी से घड़ा बनाने के लिये पानी, आग, हवा की सहायता चाहिये। कुम्हार के उपकरण, चाक, चीकर, सूत्र, ठप्पी आदि न हों तो घड़ा कैसे बनेगा ? मिट्टी है, पानी है, हवा है, आग है, और हैं कुम्हार के उपकरण किन्तु नहीं है कुम्हार। क्या घड़ा बन जायेगा ? कभी नहीं। जब घड़े जैसे तुच्छ वस्तु के बनाने के लिये उपकरणों और चेतन कर्त्ता की आवश्यकता है तो इस विशाल ब्रह्मांड की रचना चेतन कर्त्ता के बिना कैसे हो सकेगी ?

प्रत्यक्ष से भिन्न अनुमान प्रमाण ने कार्य्य कारण व्यवस्था के सहारे हमें चेतन कर्त्ता का ज्ञान करा दिया।

इस सारे तत्त्व को सामने रख कर गुरू ने शिष्य को समझाया कि हे शिष्य! यह इन्द्रियां, मन आदि किसी के नियम में बंधी कार्य्य कर रही हैं। वह शक्ति ऐसी है जिसे इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। यह इन्द्रियागोचर है। मन की गति से भी वह परे है। इंद्रियों और मन की वहां तक पहुंच नहीं है। साधारण लोग भ्रम में पड़ कर भगवान् के स्थान में जहान् की पूजा कर रहे हैं। प्रभु के सम्बन्ध में इतना तुम्हें इतना बताया जा सकता है। इन्द्रियां उस को ग्रहण नहीं कर

सकती किन्तु इन्द्रियों में देखने, सुनने, छूने, सूंघने, चखने का जो सामर्थ्य है मन में मनन की जो शक्ति है वह सब उस जगन्नियन्ता की देन है।

प्रथम खंड में इतना बताकर द्वितीय खंड में एक सूक्ष्म बात समझाई गई है। कई लोग पोथियां पढ़ कर या व्याख्यान सुन कर मानने लग जाते हैं कि वे ब्रह्म को जान चुके हैं। गुरू शिष्य को सावधान करता है कि हमारा उपदेशमात्र श्रवण करके तू इस अभिमान में न आ जाना। श्रवण तो प्रथम सोपान है, पहली सीढ़ी है।

जो लोग यह समझते हैं कि उन्हें ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान हो गया है, वे अज्ञान में फंसे हैं। उन से ब्रह्म विधा की शिक्षा देना व्यर्थ है। जो यह कहते हैं कि हमें ब्रह्म का सर्वज्ञान नहीं है वे भी उपदेश करने के योग्य नही। ब्रह्मविधा का उपदेश तो वह कर सकता है जिनको यह निश्चय हो चुका कि न तो वह ब्रह्म को सर्वथा नहीं जानता है, और न ही पूरी तरह जानता है। कार्य कारण के द्वारा रचना के लिये चेतन सत्ता का होना उसे ज्ञात हो चुका है। अतः ब्रह्म है उसका उसे पूरा निश्चय है, ब्रह्म सत्ता के निश्चय के साथ उसे भी यह भी ज्ञान हो चुका है कि ब्रह्म सर्व तो महान् है। वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, वह सर्वव्यापक है। आज तक कोई भी ऐसा ज्ञानी नहीं हुआ, जिसने यह कहने का साहस किया हो कि वह सर्व=सब को जानता है जो सर्वव्याप्य को नहीं जानता, वह सर्वव्यापक को पूरी तरह कैसे जान सकता है। अतः उसका यह ज्ञान कि ब्रह्म है किन्तु पूरी तरह वह अज्ञेय है, यथार्थ ज्ञान है।

तनिक थोड़ा सा विचारें तो यह दूसरा खंड एक प्रकार से मनन का विधान कर रहा है। मनन तर्क और युक्तियों से होता है। यहां भी उसी का सहारा लेकर कहा गया है—'नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति च।'

भला उस अनन्त को यह सांत कैसे जान सकता है। अतः ब्रह्मज्ञानी सदा अपनी अज्ञता=अल्पज्ञता को स्वीकार करता है।

अन्त में प्रतिबोध मनन से जानने पर मुक्ति का होना बताकर कहा—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। श्रवण और मनन से ब्रह्म का निश्चय करके जो साधक अनुष्ठान को कल पर छोड़ता है, उससे बढ़कर मूर्ख और कौन हो सकता है। 'न श्वः श्व उपासीत्' कल का भरोसा मत करो। जाने, कल आये भी या नहीं। ज्ञानी की पहिचान यह है कि वह सब पदार्थों में उस का दर्शन करके उससे प्रीति लगा जीवन्मुक्ति प्राप्त कर ले, ताकि मरने के पीछे जन्म-मरण के चक्कर में उसे फिर न पड़ना पड़े।

यहां 'भूतेषु भूतेषु—' कहकर एक सुन्दर उपदेश किया है। प्रभु को पाने के लिये किसी स्थान विशेष—मक्का, काशी आदि— में जाने की आवश्यकता नहीं है। वह सब में है,, सब जगह है, तुम में भी है। बाहर क्यों खोजते हो ?

पहले दो खंडों में श्रवण,, मनन तथा निदिध्यासन का निरूपण कर साक्षात् दर्शन करने का वर्णन करने की भावना रूपकालंकार के द्वारा भगवान् की उत्कृष्टता तथा इन्द्रियों से अज्ञेयता, ऋतं भरा प्रज्ञायुक्त का ही उसको जान सकना वर्णन करते हैं।

आग, हवा, या आंख और स्पर्श ने ब्रह्म को देखा, और पहचाना। इन्द्र=आत्मा गया, तो उससे वह छिप गया। इसका अभिप्राय यह है विचारशील साधक आंख से सृष्टि के पदार्थ देखकर उसके रचने वाले का विचार कर लिया करता है। जब उसे ब्रह्म के जानने में इन्द्रियों का असामर्थ्य ज्ञात होता है, तब वह आंख, नाक, कान आदि को मूंदकर स्वयं अकेला उसका अनुसन्धान करने लगता है, उस दशा में उसे कुछ दिखाई नहीं देता, मानो अन्धकार छा जाता है। परन्तु यदि वह निराश नहीं होता, वरन् अभ्यास को और दृढ़ और स्थिर करने का प्रयत्न करता है तो उसे 'उमा'=नेति नेति बुद्धि जिसे योगदर्शन में 'ऋतं' भरा 'प्रज्ञा' कहते हैं, प्राप्त होती है, वह उसे सुझाती है कि यह सब ब्रह्म की महिमा है। भूतों या इन्द्रियों का क्या सामर्थ्य,